1. आर्टस् अँड कॉमर्स कॉलेज आष्टा

- अध्यापक का नाम-विश्वास निवृत्ती पाटील
- बी ए भाग -3
- हिंदी साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य का इतिहास

- हिन्दी साहित्य पर यदि समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि **हिन्दी साहित्य का इतिहास** अत्यंत विस्तृत व प्राचीन है। सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ हरदेव बाहरी के शब्दों में, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से आरम्भ होता है। यह कहना ही ठीक होगा कि वैदिक भाषा ही हिन्दी है। इस भाषा का दुर्भाग्य रहा है कि युग-युग में इसका नाम परिवर्तित होता रहा है। कभी 'वैदिक', कभी 'संस्कृत', कभी 'प्रकृत', कभी 'अपभ्रंश' और अब - हिन्दी।[1] आलोचक कह सकते हैं कि वैदिक संस्कृत और हिन्दी में तो जमीन-आसमान का अन्तर है। पर ध्यान देने योग्य है कि हिब्रू, रूसी, चीनी, जर्मन और तमिल आदि जिन भाषाओं को 'बहुत पुरानी' बताया जाता है, उनके भी प्राचीन और वर्तमान रूपों में जमीन-आसमान का ही अन्तर है। पर लोगों ने उन भाषाओं के नाम नहीं बदले और उनके परिवर्तित स्वरूपों को 'प्राचीन', 'मध्यकालीन', 'आधुनिक' आदि कहा गया जबकि हिन्दी के सन्दर्भ में प्रत्येक युग की भाषा का नया नाम रखा जाता रहा।

किन्तु हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं पर विचार करते समय हमारे सामने हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न **दसवीं शताब्दी** के आसपास की प्राकृताभास भाषा तथा अप्रभंश भाषाओं की ओर जाता है। अपभ्रंश शब्द की व्युत्पत्ति और जैन रचनाकारों की अपभ्रंश कृतियों का हिन्दी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जो तर्क और प्रमाण हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में प्रस्तुत किये गए हैं उन पर विचार करना भी आवश्यक है। **सामान्यतः** प्राकृत **की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है।** उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही पद्‍य रचना प्रारम्भ हो गई थी।

साहित्य की दृष्टि से पद्‍यबद्ध जो रचनाएँ मिलती हैं वे दोहा रूप में ही हैं और उनके विषय, धर्म, नीति, उपदेश आदि प्रमुख हैं। राजाश्रित कवि और चारण नीति, शृंगार, शौर्य, पराक्रम आदि के वर्णन से अपनी साहित्य-रुचि का परिचय दिया करते थे। यह रचना-परम्परा आगे चलकर शैरसेनी अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी में कई वर्षों तक चलती रही। पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की देशी भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। इस भाषा कोविद्‍यापति ने **देसी भाषा** कहा है, किन्तु यह निर्णय करना सरल नहीं है कि हिन्दी शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिए कब और किस देश में प्रारम्भ हुआ। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में हिन्दी शब्द का प्रयोग विदेशी मुसलमानों ने किया था। इस शब्द से उनका तात्पर्य 'भारतीय भाषा' का था।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकार और उनके ग्रन्थ

- 1. गार्सा द तासी : इस्तवार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ऐंदुस्तानी (फ्रेंच भाषा में; फ्रेंच विद्वान, हिन्दी साहित्य के पहले इतिहासकार)
- 2. शिवसिंह सेंगर : शिव सिंह सरोज
- 3. जार्ज ग्रियर्सन : द मॉडर्न वर्नेक्यूलर लिट्रैचर आफ हिंदोस्तान
- 4. मिश्र बंधु : मिश्र बंधु विनोद
- 5. रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास
- 6. हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका; हिन्दी साहित्य का आदिकाल; हिन्दी साहित्य :उद्भव और विकास
- 7. रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
- 8. डॉ धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य
- 9. डॉ नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास; हिन्दी वांङ्मय 20वीं शती
- 10. रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986
- 11. बच्चन सिंह : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
- 12. डा० मोहन अवस्थी : हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास

हिन्दी साहित्य के विकास के विभिन्न काल

- हिन्दी साहित्य का आरंभ आठवीं शताब्दी से माना जाता है। यह वह समय है जब सम्राट् हर्ष की मृत्यु के बाद देश में अनेक छोटे छोटे शासनकेन्द्र स्थापित हो गए थे जो परस्पर संघर्षरत रहा करते थे। विदेशी मुसलमानों से भी इनकी टक्कर होती रहती थी। धार्मिक क्षेत्र अस्तव्यस्त थे। इन दिनों उत्तर भारत के अनेक भागों में बौद्ध धर्म का प्रचार था। बौद्ध धर्म का विकास कई रूपों में हुआ जिनमें से एक वज्रयान कहलाया। वज्रयानी तांत्रिक थे और सिद्ध कहलाते थे। इन्होंने जनता के बीच उस समय की लोकभाषा में अपने मत का प्रचार किया। हिन्दी का प्राचीनतम साहित्य इन्हीं वज्रयानी सिद्धों द्वारा तत्कलीन लोकभाषा पुरानी हिन्दी में लिखा गया। इसके बाद नाथपंथी साधुओं का समय आता है। इन्होंने बौद्ध, शांकर, तंत्र, योग और शैव मतों के मिश्रण से अपना नया पंथ चलाया जिसमें सभी वर्गों और वर्णों के लिए धर्म का एक सामान्य मत प्रतिपादित किया गया था। लोकप्रचलित पुरानी हिन्दी में लिखी इनकी अनेक धार्मिक रचनाएँ उपलब्ध हैं। इसके बाद जैनियों की रचनाएँ मिलती हैं। स्वयंभू का "पउमचरिउ' अथवा रामायण आठवीं शताब्दी की रचना है। बौद्धों और नाथपंथियों की रचनाएँ मुक्तक और केवल धार्मिक हैं पर जैनियों की अनेक रचनाएँ जीवन की सामान्य अनुभूतियों से भी संबद्ध हैं। इनमें से कई प्रबंधकाव्य हैं। इसी काल में अब्दुलरहमान का काव्य "संदेशरासक' भी लिखा गया जिसमें परवर्ती बोलचाल के निकट की भाषा मिलती है। इस प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी तक पुरानी हिन्दी का रूप निर्मित और विकसित होता रहा।

आदिकाल (1000 से 1300 ई)

- ग्यारहवीं सदी के लगभग देशभाषा हिन्दी का रूप अधिक स्फुट होने लगा। उस समय पश्चिमी हिन्दी प्रदेश में अनेक छोटे छोटे राजपूत राज्य स्थापित हो गए थे। ये परस्पर अथवा विदेशी आक्रमणकारियों से प्राय: युद्धरत रहा करते थे। इन्हीं राजाओं के संरक्षण में रहनेवाले चारणों और भाटों का राजप्रशस्तिमूलक काव्य वीरगाथा के नाम से अभिहित किया गया। इन वीरगाथाओं को रासो कहा जाता है। इनमें आश्रयदाता राजाओं के शौर्य और पराक्रम का ओजस्वी वर्णन करने के साथ ही उनके प्रेमप्रसंगों का भी उल्लेख है। रासो ग्रन्थों में संघर्ष का कारण प्राय: प्रेम दिखाया गया है। इन रचनाओं में इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। रासो वीरगीत (बीसलदेवरासो और आल्हा आदि) और प्रबंधकाव्य (पृथ्वीराजरासो, खमनरासो आदि) - इन दो रूपों में लिखे गए। इन रासो ग्रन्थों में से अनेक की उपलब्ध प्रतियाँ चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से संदिग्ध हों पर इन वीरगाथाओं की मौखिक परंपरा असंदिग्ध है। इनमें शौर्य और प्रेम की ओजस्वी और सरस अभिव्यक्ति हुई है।
- इसी कालावधि में मैथिल कोकिल विद्यापति हुए जिनकी पदावली में मानवीय सौंदर्य ओर प्रेम की अनुपम व्यंजना मिलती है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका इनके दो अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अमीर खुसरो का भी यही समय है। इन्होंने ठेठ खड़ी बोली में अनेक पहेलियाँ, मुकरियाँ और दो सखुन रचे हैं। इनके गीतों, दोहों की भाषा ब्रजभाषा है।

भक्तिकाल (1300 से 1650 ई.)

- भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार संतों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचारप्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्यपरंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँचनीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों - कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित् के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अत: सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान् के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों प्रतिष्ठा हुई।
- इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिन्दी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए - ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ - रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

रीतिकाल (1650 से 1850 ई.)

- १७०० ई. के आस पास हिन्दी कविता में एक नया मोड़ आया। इसे विशेषत: तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृतसाहित्य से उत्तेजना मिली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के कतिपय अंशों ने उसे शास्त्रीय अनुशासन की ओर प्रवृत्त किया। हिन्दी में 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजनप्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षणग्रन्थों को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को **'रीतिकाव्य'** कहा गया। इस काव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परंपरा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी औरहिन्दी के आदिकाव्य तथा कृष्णकाव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं।
- रीतिकाव्य रचना का आरंभ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचंद्रिका हैं। केशव के कई दशक बाद चिन्तामणि से लेकर अठारहवीं सदी तक हिन्दी में रीतिकाव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ जिसमें नर-नारी-जीवन के रमणीय पक्षों और तत्संबंधी सरस संवेदनाओं की अत्यंत कलात्मक अभिव्यक्ति व्यापक रूप में हुई।

आधुनिक काल (1850 से अब तक)

- **<u>उन्नीसवीं शताब्दी</u>**
- यह आधुनिक युग का आरंभ काल है जब भारतीयों का यूरोपीय संस्कृति से संपर्क हुआ। भारत में अपनी जड़ें जमाने के काम में अँगरेजी शासन ने भारतीय जीवन को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित और आंदोलित किया। नई परिस्थितियों के धक्के से स्थितिशील जीवनविधि का ढाँचा टूटने लगा। एक नए युग की चेतना का आरंभ हुआ। संघर्ष और सामंजस्य के नए आयाम सामने आए।
- नए युग के साहित्यसृजन की सर्वोच्च संभावनाएँ खड़ी बोली गद्य में निहित थीं, इसलिए इसे गद्य-युग भी कहा गया है। हिन्दी का प्राचीन गद्य राजस्थानी, मैथिली और ब्रजभाषा में मिलता है पर वह साहित्य का व्यापक माध्यम बनने में अशक्त था। खड़ीबोली की परंपरा प्राचीन है। अमीर खुसरोसे लेकर मध्यकालीन भूषण तक के काव्य में इसके उदाहरण बिखरे पड़े हैं। खड़ी बोली गद्य के भी पुराने नमूने मिले हैं। इस तरह का बेहत सा गद्य फारसी और गुरुमुखी लिपि में लिखा गया है। दक्षिण की मुसलिम रियासतों में "दखिनी' के नाम से इसका विकास हुआ। अठारहवीं सदी में लिखा गया रामप्रसाद निरंजनी और दौलतराम का गद्य उपलब्ध है। पर नई युगचेतना के संवाहक रूप में हिन्दी के खड़ी बोली गद्य का व्यापक प्रसार उन्नीसवीं सदी से ही हुआ। कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में, नवागत अँगरेज अफसरों के उपयोग के लिए, लल्लू लाल तथा सदल मिश्र ने गद्य की पुस्तकें लिखकर हिन्दी के खड़ी बोली गद्य की पूर्वपरंपरा के विकास में कुछ सहायता दी। सदासुखलाल और इंशाअल्ला खाँ की गद्य रचनाएँ इसी समय लिखी गईं। आगे चलकर प्रेस, पत्रपत्रिकाओं, ईसाई धर्मप्रचारकों तथा नवीन शिक्षा संस्थाओं से हिन्दी गद्य के विकास में सहायता मिली। बंगाल, पंजाब, गुजरात आदि विभिन्न प्रान्तों के निवासियों ने भी इसकी उन्नति और प्रसार में योग दिया। हिन्दी का पहला समाचारपत्र "उदंत मार्तंड' १८२६ ई. में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह हिन्दी गद्य के निर्माण और प्रसार में अपने अपने ढंग से सहायक हुए। आर्यसमाज और अन्य सांस्कृतिक आंदोलनों ने भी आधुनिक गद्य को आगे बढ़ाया।

आर्टस् अँड कॉमर्स कॉलेज, आष्टा

अध्यापक का नाम-विश्वास निवृत्ती पाटील
बी ए भाग -3
हिंदी साहित्य का इतिहास

महान संत कवि गोस्वामी तुलसीदास

- कलम में बडी ताकत होती है. यह सब जानते हैं लेकिन यह ताकत आज से ही नहीं है प्राचीन काल से है. यह कलम एक आम आदमी को भी संतों की श्रेणी में खड़ा कर देती है. भक्ति, भाव और कलम के मिलन ने भारत को कई संत, विद्वान और कवि दिए हैं जिन्होंने समय-समय पर देश की संस्कृति को अलंकृत किया है. ऐसे ही एक महान संत और कवि थे राम भक्त तुलसीदास (Tulsidas). 'श्रीरामचरितमानस' (Ramcharitmanas) के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास एक महान कवि होने के साथ साथ पूजनीय भी हैं.
-
- कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास (Tulsidas)को साक्षात भगवान के दर्शन हुए थे और उन्हीं की इच्छानुसार उन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना की थी. गोस्वामी तुलसीदास (Tulsidas) का जन्म राजापुर गांव (Rajapur Village, U.P.) (वर्तमान बांदा जिला) उत्तर प्रदेश (Uttar Pradesh) में हुआ था. संवत 1554 की श्रावण मास की अमावस्या के सातवें दिन तुलसीदास का जन्म हुआ था. उनके पिता का नाम आत्माराम (Atma Ram) और माता का नाम हुलसी देवी (Hulsi Devi) था. लोगों में ऐसी भी मान्यता है कि तुलसीदास (Tulsidas)का जन्म बारह महीने गर्भ में रहने के बाद हुआ था जिसकी वजह से वह काफी हृष्ट पुष्ट थे. जन्म लेने के बाद प्राय: सभी शिशु रोया ही करते हैं किन्तु इस बालक ने जो पहला शब्द बोला वह राम था. अतएव उनका घर का नाम ही रामबोला पड गया. माँ तो जन्म देने के बाद दूसरे ही दिन चल बसीं, पिता ने किसी और अनिष्ट से बचने के लिये बालक को चुनियाँ नाम की एक दासी को सौंप दिया और स्वयं विरक्त हो गए. जब रामबोला साढे पाँच वर्ष का हुआ तो चुनियाँ भी नहीं रही. वह गली-गली भटकता हुआ अनाथों की तरह जीवन जीने को विवश हो गया.

बचपन में इतनी परेशानियां और मुश्किलें झेलने के बाद भी तुलसीदास (Tulsidas)ने कभी भगवान का दामन नहीं छोडा और उनकी भक्ति में हमेशा लीन रहे. बचपन में उनके साथ एक और घटना घटी जिसने उनके जीवन को पूरी तरह बदल कर रख दिया. भगवान शंकर जी की प्रेरणा से रामशैल पर रहनेवाले श्री अनन्तानन्द जी के प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्द जी (नरहरि बाबा) ने रामबोला के नाम से बहुचर्चित हो चुके इस बालक को ढूंढ निकाला और विधिवत उसका नाम तुलसीराम रखा. इसके बाद उन्हें शिक्षा दी जाने लगी.

21 वर्ष की आयु में तुलसीदास (Tulsidas) का विवाह यमुना के पार स्थित एक गांव की अति सुन्दरी भारद्वाज गोत्र की कन्या रत्नावली से कर दी गई. क्यूंकि गौना नहीं हुआ था अत: कुछ समय के लिये वे काशी चले गए और वहां शेषसनातन जी के पास रहकर वेद-वेदांग के अध्ययन में जुट गए. लेकिन एक दिन अपनी पत्नी की बहुत याद आने पर वह गुरु की आज्ञा लेकर उससे मिलने पहुंच गए. लेकिन उस समय यमुना नदी में बहुत उफान आया हुआ था पर तुलसीराम ने अपनी पत्नी से मिलने के लिए उफनती नदी को भी पार कर लिया.

यह सुनते ही तुलसीदास (Tulsidas)की चेतना जागी और उसी समय से वह प्रभु राम की वंदना में जुट गए. इसके बाद तुलसीराम को तुलसीदास के नाम से पुकारा जाने लगा. वह अपने गांव राजापुर पहुंचे जहां उन्हें यह पता चला कि उनकी अनुपस्थिति में उनके पिता भी नहीं रहे और पूरा घर नष्ट हो चुका है तो उन्हें और भी अधिक कष्ट हुआ. उन्होंने विधि-विधान पूर्वक अपने पिता जी का श्राद्ध किया और गाँव में ही रहकर लोगों को भगवान राम की कथा सुनाने लगे.

कुछ काल राजापुर रहने के बाद वे पुन: काशी चले गये और वहाँ की जनता को राम-कथा सुनाने लगे. कथा के दौरान उन्हें एक दिन मनुष्य के वेष में एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान जी का पता बतलाया. हनुमान जी से मिलकर तुलसीदास ने उनसे श्रीरघुनाथजी का दर्शन कराने की प्रार्थना की. हनुमानजी (Lord Hanuman) ने कहा- "तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथजी के दर्शन होंगें." इस पर तुलसीदास जी चित्रकूट की ओर चल पड़े.

चित्रकूट पहुँच कर उन्होंने रामघाट पर अपना आसन जमाया. एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले ही थे कि यकायक मार्ग में उन्हें श्रीराम के दर्शन हुए. उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर धनुष-बाण लिये जा रहे हैं. तुलसीदास (Tulsidas) उन्हें देखकर आकर्षित तो हुए, परन्तु उन्हें पहचान न सके. तभी पीछे से हनुमान्जी (Hanuman) ने आकर जब उन्हें सारा भेद बताया तो वे पश्चाताप करने लगे. इस पर हनुमान्जी ने उन्हें सात्वना दी और कहा प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे.

संत कबीर दास

- कबीर एक ऐसी शख्शियत जिसने कभी शास्त्र नही पढा फिर भी ज्ञानियों की श्रेणीं में सर्वोपरी। कबीर, एक ऐसा नाम जिसे फकीर भी कह सकते हैं और समाज सुधारक भी ।
- मित्रों, कबीर भले ही छोटा सा एक नाम हो पर ये भारत की वो आत्मा है जिसने रूढियों और कर्मकाडों से मुक्त भारत की रचना की है। कबीर वो पहचान है जिन्होने, जाति-वर्ग की दिवार को गिराकर एक अद्भुत संसार की कल्पना की।
- मानवतावादी व्यवहारिक धर्म को बढावा देने वाले कबीर दास जी का इस दुनिया में प्रवेश भी अदभुत प्रसंग के साथ हुआ।माना जाता है किउनका जन्म सन् 1398 में ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन वाराणसी के निकट लहराता नामक स्थान पर हुआ था

उस दिन नीमा नीरू संग ब्याह कर डोली में बनारस जा रही थीं, बनारस के पास एक सरोवर पर कुछ विश्राम के लिये वो लोग रुके थे। अचानक नीमा को किसी बच्चे के रोने की आवाज आई वो आवाज की दिशा में आगे बढी। नीमा ने सरोवर में देखा कि एक बालक कमल पुष्प में लिपटा हुआ रो रहा है। निमा ने जैसे ही बच्चा गोद में लिया वो चुप हो गया। नीरू ने उसे साथ घर ले चलने को कहा किन्तु नीमा के मन में ये प्रश्न उठा कि परिजनों को क्या जवाब देंगे। परन्तु बच्चे के स्पर्श से धर्म, अर्थात कर्तव्य बोध जीता और बच्चे पर गहराया संकट टल गया। बच्चा बकरी का दूध पी कर बड़ा हुआ। छः माह का समय बीतने के बाद बच्चे का नामकरण संस्कार हुआ। नीरू ने बच्चे का नाम कबीर रखा किन्तु कई लोगों को इस नाम पर एतराज था क्योंकि उनका कहना था कि, कबीर का मतलब होता है महान तो एक जुलाहे का बेटा महान कैसे हो सकता है? नीरू पर इसका कोई असर न हुआ और बच्चे का नाम कबीर ही रहने दिया। ये कहना अतिश्योक्ति न होगी कि अनजाने में ही सही बचपन में दिया नाम बालक के बड़े होने पर सार्थक हो गया। बच्चे की किलकारियाँ नीरू और नीमा के मन को मोह लेतीं। अभावों के बावजूद नीरू और नीमा बहुत खुशी-खुशी जीवन यापन करने लगे।

एक बार किसी ने बताया कि संत रामानंद स्वामी ने सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ लड़ाई छेड़ रखी है। कबीर उनसे मिलने निकल पड़े किन्तु उनके आश्रम पहुँचकर पता चला कि वे मुसलमानों से नही मिलते। कबीर ने हार नही मानी और पंचगंगा घाट पर रात के अंतिम पहर पर पहुँच गये और सीढी पर लेट गये। उन्हे पता था कि संत रामानंद प्रातः गंगा स्नान को आते हैं। प्रातः जब स्वामी जी जैसे ही स्नान के लिये सीढी उतर रहे थे उनका पैर कबीर के सीने से टकरा गया। राम-राम कहकर स्वामी जी अपना पैर पीछे खींच लिये तब कबीर खड़े होकर उन्हे प्रणाम किये। संत ने पूछा आप कौन? कबीर ने उत्तर दिया आपका शिष्य कबीर। संत ने पुनः प्रश्न किया कि मैने कब शिष्य बनाया? कबीर ने विनम्रता से उत्तर दिया कि अभी-अभी जब आपने राम-राम कहा मैने उसे अपना गुरुमंत्र बना लिया। संत रामदास कबीर की विनम्रता से बहुत प्रभावित हुए और उन्हे अपना शिष्य बना लिये। कबीर को स्वामी जी ने सभी संस्कारों का बोध कराया और ज्ञान की गंगा में डुबकी लगवा दी।

कबीर पर गुरू का रंग इस तरह चढा कि उन्होने गुरू के सम्मान में कहा है,

सब धरती कागज करू, लेखनी सब वनराज।
सात समुंद्र की मसि करु, गुरु गुंण लिखा न जाए।।
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
शीश दियो जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।

ये कहना अतिश्योक्ति नही है कि जीवन में गुरू के महत्व का वर्णन कबीर दास जी ने अपने दोहों में पूरी आत्मियता से किया है। कबीर मुसलमान होते हुए भी कभी मांस को हाँथ नही लगाया । कबीर जाँति-पाँति और ऊँच-नीच के बंधनो से परे फक्कड़, अलमस्त और क्रांतिदर्शी थे। उन्होने रमता जोगी और बहता पानी की कल्पना को साकार किया।

जयशंकर प्रसाद

- जयशंकर प्रसादजन्म30 जनवरी 1889 वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारतमृत्युजनवरी 14, 1937 (उम्र 47) वाराणसी, भारतउपजीविकाउपन्यासकार, नाटककार, कवि**जयशंकर प्रसाद** (३० जनवरी १८८९ - १४ जनवरी १९३७) हिन्दी कवि, नाटकार, कथाकार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई।
- आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास में इनके कृतित्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युगप्रवर्तक लेखक थे जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिंदी को गौरव करने लायक कृतियाँ दीं। कवि के रूप में वे निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के चौथे स्तंभ के रूप में प्रतिष्ठित हुए है; नाटक लेखन में भारतेंदु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे जिनके नाटक आज भी पाठक चाव से पढते हैं। इसके अलावा कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने कई यादगार कृतियाँ दीं। विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करूणा और भारतीय मनीषा के अनेकानेक गौरवपूर्ण पक्षों का उदघाटन। ४८ वर्षो के छोटे से जीवन में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और आलोचनात्मक निबंध आदि विभिन्न विधाओं में रचनाएं की।

जीवन परिचय.

प्रसाद जी का जन्म माघ शुक्ल 10, संवत् 1946 वि. में काशी के सरायगोवर्धन में हुआ। इनके पितामह बाबू शिवरतन साहू दान देने में प्रसिद्ध थे और इनके पिता बाबू देवीप्रसाद जी कलाकारों का आदर करने के लिये विख्यात थे। इनका काशी में बड़ा सम्मान था और काशी की जनता काशीनरेश के बाद 'हर हर महादेव' से बाबू देवीप्रसाद का ही स्वागत करती थी। किशोरावस्था के पूर्व ही माता और बड़े भाई का देहावसान हो जाने के कारण १७ वर्ष की उम्र में ही प्रसाद जी पर आपदाओं का पहाड़ टूट पड़ा। कच्ची गृहस्थी, घर में सहारे के रूप में केवल विधवा भाभी, कुटुबिंयों, परिवार से संबद्ध अन्य लोगों का संपत्ति हड़पने का षड्यंत्र, इन सबका सामना उन्होंने धीरता और गंभीरता के साथ किया। प्रसाद जी की प्ारंभिक शिक्षा काशी मे क्वींस कालेज में हुई, किंतु बाद में घर पर इनकी शिक्षा का व्यापक प्रबंध किया गया, जहाँ संस्कृत, हिंदी, उर्दू, तथा फारसी का अध्ययन इन्होंने किया।दीनबंधु ब्रह्मचारी जैसे विद्वान् इनके संस्कृत के अध्यापक थे। इनके गुरुओं में 'रसमय सिद्ध' की भी चर्चा की जाती है।

घर के वातावरण के कारण साहित्य और कला के प्रति उनमें प्रारंभ से ही रुचि थी और कहा जाता है कि नौ वर्ष की उम्र में ही उन्होंने 'कलाधर' के नाम से व्रजभाषा में एक सवैया लिखकर 'रसमय सिद्ध' को दिखाया था।

उन्होंने वेद, इतिहास, पुराण तथा साहित्य शास्त्र का अत्यंत गंभीर अध्ययन किया था। वे बाग-बगीचे तथा भोजन बनाने के शौकीन थे और शतरंज के खिलाड़ी भी थे। वे नियमित व्यायाम करनेवाले, सात्विक खान पान एवं गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे। वे नागरीप्रचारिणी सभा के उपाध्यक्ष भी थे। क्षय रोग से जनवरी 14, 1937 (उम्र 47) को उनका देहांत काशी में हुआ।

काव्य

प्रसाद ने काव्यरचना ब्रजभाषा में आरंभ की और धीर-धीरे खड़ी बोली को अपनाते हुए इस भाँति अग्रसर हुए कि खड़ी बोली के मूर्धन्य कवियों में उनकी गणना की जाने लगी और वे युगवर्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

उनकी काव्य रचनाएँ दो वर्गो में विभक्त है काव्यपथअनुसंधान की रचनाएँ और रससिद्ध रचनाएँ। आँसू, लहर तथा कामायनी दूसरे वर्ग की रचनाएँ हैं। इस समस्त रचनाओं की विशेषताओं का आकलन करने पर हिंदी काव्य को प्रसाद जी की निम्नांकित देन मानी जा सकती है।

उन्होंने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई। उनकी सर्वप्रथम छायावादी रचना 'खोलो द्वार' 1914 ई. में इंदु में प्रकाशित हुई। वे छायावाद के प्रतिष्ठापक ही नहीं अपितु छायावादी पद्धति पर सरस संगीतमय गीतों के लिखनेवाले श्रेष्ठ कवि भी हैं। उन्होंने हिंदी में 'करुणालय' द्वारा गीत नाट्य का भी आरंभ किया। उन्होंने भिन्न तुकांत काव्य लिखने के लिये मौलिक छंदचयन किया और अनेक छंद का संभवत: उन्होंने सबसे पहले प्रयोग किया। उन्होंने नाटकीय ढंग पर काव्य-कथा-शैली का मनोवैज्ञानिक पथ पर विकास किया। साथ ही कहानी कला की नई टेकनीक का संयोग काव्यकथा से कराया। प्रगीतों की ओर विशेष रूप से उन्होंने गद्य साहित्य को संपुष्ट किया और नीरस इतिवृत्तात्मक काव्यपद्धति को भावपद्धतिकेसिंहासन पर स्थापित किया।

काव्यक्षेत्र में प्रसाद की कीर्ति का मूलाधार 'कामायनी' है।खड़ीबोली का यह अद्वितीय महाकव्य मनु और श्रद्धा को आधार बनाकर रचित मानवता को विजयिनी बनाने का संदेश देता है। यह रूपक कथाकाव्य भी है जिसमें मन, श्रद्धा और इड़ा (बुद्धि) के योग से अखंड आनंद की उपलब्धि का रूपक प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर संयोजित किया गया है। उनकी यह कृति छायावाद ओर खड़ी बोली की काव्यगरिमा का ज्वलंत उदाहरण है।सुमित्रानंदन पंत इसे 'हिंदी में ताजमहल के समान' मानते हैं। शिल्पविधि, भाषासौष्ठव एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना खड़ी बोली के किसी भी काव्य से नहीं की जा सकती है।

कृतियाँ

- काव्य
- कानन कुसुम
- महाराणा का महत्व
- झरना
- आंसू
- लहर
- कामायनी
- प्रेम पथिक
- नाटक
- स्कंदगुप्त
- चंद्रगुप्त
- ध्रुवस्वामिनी
- जन्मेजय का नाग यज्ञ
- राज्यश्री
- कामना
- एक घूंट

THANK YOU